

भारतीय ज्ञान परंपरा में अष्टांग योग के विविध आयाम

डॉ निकेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग एस एस वी कॉलेज, कहलगाँवा
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, (बिहार)
ईमेल: nikesk2012@gmail.com

प्रस्तावना: भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का स्थान अद्वितीय है। ज्ञान की इस परंपरा में योग को भारत की सबसे बड़ी देन के रूप में विश्व भर में स्वीकार किया जा रहा है। विश्व पटल पर बढ़ता हुआ योग भारतीय ज्ञान परंपरा की विजय है। निश्चित रूप से इसका श्रेय योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि को जाता है। उन्होंने योगसूत्र की रचना कर योग के आठ अंग अर्थात् योग के आठ आयाम वाले अष्टांग योग के मार्ग से सम्पूर्ण विश्व को लाभान्वित किया है। अतः इस शोध-पत्र का उद्देश्य महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग के आठ आयामों से परिचित होना है।

मुख्य शब्द: अष्टांग योग, चित्त, यम, नियम, आसान, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, बहिरंग, अंतरंग।

महर्षि पतंजलि को योग दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने योग को 'चित्त की वृत्तियों के निरोध' (योग: चित्तवृत्तिनिरोधः)¹ के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने 'योगसूत्र' नाम से योगसूत्रों का एक संकलन किया जिसमें उन्होंने पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए अष्टांग योग (आठ अंगों वाले योग) का एक मार्ग विस्तार से बताया है। अष्टांग योग को आठ अलग-अलग चरणों वाला मार्ग नहीं समझना चाहिए; यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। इनके संबंध में महर्षि पतंजलि लिखते हैं-**यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि**² ये आठ अंग हैं: (1) यम, (2)नियम, (3)आसन, (4)प्राणायाम, (5)प्रत्याहार, (6)धारणा, (7) ध्यान, (8)समाधि। इन आठ अंगों के अनुष्ठान से अविद्या का नाश तथा यथार्थ ज्ञान का उदय होता है। जैसे-जैसे साधक योगाभ्यास में अग्रतार होता है वैसे-वैसे उसकी अविद्या क्षीण होती जाती है और प्रज्ञा प्रस्फुटित होती जाती है। योग की पूर्ण सिद्धि से विवेकख्याति की उत्पत्ति होती है। इन योगों का प्रयोजन है- विवेक ज्ञान की प्राप्ति एवं अशुद्धि तथा अविद्या का नाश। विवेक ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है।

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग को दो भागों में बाँटा है - बहिरंग योग एवं अंतरंग योग। इसके अंतर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार) 'बहिरंग' और शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अंतरंग' नाम से प्रशिद्ध हैं। आठ अंगों का निम्नलिखित विश्लेषण हम क्रमशः उपस्थित कर रहे हैं:

1. यम - यम का अर्थ होता है- उपरम या अभावा **अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्याउपरिग्रहा यमाः**³ अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम कहलाते हैं। सभी यम धर्म के रक्षक हैं, परंतु जहाँ यम धर्म का विरोधी हो जाये वहाँ धर्म को प्रधानता दी जाती है। ये निम्नलिखित हैं -अहिंसा - मन, वाणी और कर्म से कभी भी किसी भी प्रकार के प्राणी को दुःख नहीं देना अहिंसा है। दूसरे शब्दों में प्राणीमात्र से प्रेम अहिंसा है। विरोधी भाव - देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए की गई हिंसा भी अहिंसा है, क्योंकि वह धर्म की रक्षक है। सत्य - इन्द्रियों और मन के द्वारा जो ज्ञान हो उसे वैसा का वैसा व्यक्त करना सत्य है। विरोधी भाव - लंगड़े को लंगड़ा कहना सत्य है, गूंगे को गूंगा कहना भी सत्य है, किन्तु अहिंसा का विरोधी होने से अधर्म है। अतः व्यर्थ का कटु सत्य कभी नहीं बोलनी चाहिए।

अस्तेय - दूसरों के विचारों, अधिकारों या वस्तुओं का अपहरण करना चोरी (स्तेय) है, इसके विपरीत अस्तेय है।

ब्रह्मचर्य - मन, वचन और कर्म से सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार के मिथुनों का त्याग ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह - व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए धन - सम्पत्ति का संग्रह परिग्रह और इसके विपरीत इसके अभाव का नाम अपरिग्रह है।

2. नियम - शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः⁴ अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह पांच नियम कहलाते हैं। सभी नियम आत्मा, मन और इन्द्रियों की स्वच्छता व पवित्रता के पोषक और शोधक हैं। ये पांच नियम हैं-

शौच - जल से बाहर के अंगों यथा हाथ, पैर आदि शारीरिक अंग को शुद्ध रखे, सत्य के पालन से मन को शुद्ध रखे, विद्या और तप से जीवात्मा का शुद्धिकरण करें, ज्ञान से बुद्धि का शुद्धिकरण करें। शौच स्वयं पवित्रता का प्रतीक है।

संतोष - अपने किये गये प्रयत्न के अनुसार जो फल मिले उसमें प्रसन्न रहना संतोष है। कहा भी गया है 'संतोषो सदा सुखी' जिसे अपने किये गये कर्म में संतोष तथा कर्मफल में विश्वास रहता है वह हमेशा सुखी रहता है। इसलिए आप जो भी करें ईश्वर का कार्य समझ कर करें जिससे आपको असंतोष ना हो।

तप - धर्म और कर्तव्य कर्म के लिए कष्ट सहन को तप कहते हैं। हमारा धर्म है कि आत्मा को अविद्या की राह से हटाकर विद्या के प्रकाशमय पथ का अनुसरण कराये। इसके निमित्त जो सर्दी - गर्मी, भूख - प्यास आदि कष्ट सहन किया जाता है, वह सभी तप की श्रेणी में आते हैं। तप संकल्प से किये जाते हैं, नकल से नहीं। अधिकांश लोग दूसरों का अनुकरण करके व्रत - उपवास आदि रखना शुरू कर देते हैं किन्तु यह मुखौटा है। आप जो भी तप का अभ्यास करें, उसके पीछे संकल्प होना चाहिए। आपके पास अपने तप का स्पष्ट कारण होना चाहिए कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। कोई भी ऐसा तप ना करें, जिससे लाभ के बजाय हानि की सम्भावना अधिक हो। जैसे बहुत से लोग निर्जला एकादशी का व्रत करते हैं जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से एकदम अनुचित है। उपवास कोई भी क्यों ना हो, जल का तो भरपूर उपयोग होना चाहिए।

स्वाध्याय - स्वाध्याय के दो अर्थ लिए जाते हैं, पहला - स्वयं का अध्ययन करना और दूसरा सदग्रंथों का अध्ययन करना। जिस तरह हमें प्रतिदिन भोजन की आवश्यकता होती है उसी तरह आत्मा को भी प्रतिदिन स्वाध्याय रूपी भोजन की आवश्यकता होती है। स्वाध्याय स्वयं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया का नाम है। आज का वातावरण बहुत ही कलुषित हो चुका है, तथा प्रतिदिन मार्गदर्शन प्रदान करने वाले गुरु का संयोग आज के समय में संभव नहीं। इसलिए विद्वान मनुष्य को चाहिए कि सदग्रंथ को अपना मार्गदर्शक मानकर अपने जीवन को ईश्वरीय मार्ग के लिए प्रशिक्षित करें।

ईश्वर प्रणिधान - ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है कि जो भी करें, ईश्वर को समर्पित कर दें। इससे कर्ता होने का अहंकार नहीं होगा। ईश्वर को हर समय अपने साथ अनुभव करें।

3. आसन - आसन शब्द संस्कृत भाषा के अस धातु से बना है जिनका दो अर्थ हैं- बैठने का स्थान तथा दूसरा शारीरिक अवस्था। शरीर

मन और आत्मा जब एक संग और स्थिर हो जाता है, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है। तेजोबिन्दु उपनिषद में आसन के विषय में कहा है- सुखेनैव भवेत् यस्मिन् जस्रं ब्रह्मचिन्तमा अर्थात् जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। योगसूत्र के अनुसार- **संतोषादनुत्तमसुखलाभः**¹⁵ अर्थात् - स्थिर और सुख पूर्वक बैठना आसन कहलाता है। सुखपूर्वक बैठने की अवस्था का नाम आसन है। हठयोग में कई आसनों का वर्णन है जिनमें जो आसन साधना के लिए उपयुक्त है उनमें सुखासन, पद्मासन, वज्रासन, बद्ध - पद्मासन और सिद्धासन है। जब लम्बे समय तक योगी साधक को इन आसनों में बैठने का अभ्यास हो जाता है तो उसे आसन सिद्धि कहते हैं। इनके अतिरिक्त कई आसन हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं।

4. प्राणायाम - प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण + आयाम। 'प्राण' का अर्थ होता है- 'जीवन-शक्ति'। 'आयाम' के दो अर्थ हैं। पहला- नियन्त्रण करना या रोकना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना। प्राणवायु का निरोध करना 'प्राणायाम' कहलाता है। योग सूत्र में प्राणायाम को इस प्रकार प्रतिपादित किया है - **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगोर्गतिविच्छेद प्राणायामः**¹⁶ अर्थात् - उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति के नियमन करना "प्राणायाम है। प्राणवायु को भीतर लेना श्वास है, बाहर निकालना प्रश्वास है। जब इन दोनों की गति को विच्छेद किया जाता है तो इसे प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम का अविष्कार प्राण नाड़ियों के शुद्धिकरण के लिए किया गया है। इनके शुद्धिकरण के पश्चात् योगी का प्राण पर अधिकार हो जाता है। जब प्राण पर अधिकार हो जाता है तो वह प्राण को जहाँ चाहे लगा सकता है। असल में प्राणायाम प्राणशक्ति है जिसके सही उपयोग के कई लाभ हैं।

5. प्रत्याहार - योग दर्शन में प्राणायाम के पश्चात् प्रत्याहार का कथन एवं विवेचन उसकी उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है। **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्थस्वरूपानकार इन्द्रियाणां प्रत्याहारः**¹⁷ प्रत्याहार का सामान्य अर्थ होता है, पीछे हटना, उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रिया अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अन्तर्मुख हो जाती है, इसलिए इसे प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों के संयम को भी प्राणायाम कहते हैं। प्राण और चित्त दोनों एक दूसरे से बंधे हुए हैं। यदि मन नियंत्रण में हो जाये तो प्राण स्वतः नियंत्रण में आ जाता है। इसके विपरीत यदि प्राण नियंत्रण में आ जाये तो मन स्वतः नियंत्रण में हो जाता है। "जहाँ चित्त वहाँ प्राण"-इस उक्ति के अनुसार मन और प्राण का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जब प्राणायाम करते - करते प्राण नियंत्रण में आ जाता है तो मन स्वतः नियंत्रण में आ जाता है। और जब मन नियंत्रण में आकर इन्द्रियों के बाहरी विषयों से अन्तर्मुख होना है उसी अवस्था को प्रत्याहार कहते हैं।

6. धारणा - महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के अन्तर्गत यह योग का छठा अंग है। **देशबन्धश्चित्तस्थ धारणा**¹⁸ मन (चित्त) को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। यह वस्तुतः मन की स्थिरता का घटक है। हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते हैं। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और मन की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही अपनी पूर्णता में रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूर्णतः चित्त की एकाग्रता की पूर्णता रहती है। जब मन प्रत्याहार से अन्तर्मुख होने लगता है तो उसे किसी ध्येय पर लगाया जाता है। प्रवृत्ति से मन चंचल होने से ध्येय वस्तु पर टिकता नहीं है किन्तु बार - बार उसे ध्येय वस्तु पर लाया जाता है। ध्येय के निरन्तर प्रवाह की इस प्रक्रिया को धारणा कहते हैं।

7. ध्यान - धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है। ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्येचित्तायाम् धातु से होती है जिसका अर्थ होता है- चिन्तन करना। किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रिकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना है। **तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्**¹⁹

सामान्यतः ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनिर्योग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निगमन हो और किसी अन्य विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो 'ध्यान' कहलाता है। योग शास्त्रों के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये उसी में चित्त का एकाग्र से जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना 'ध्यान' कहलाता है। जब निरन्तर धारणा के अभ्यास से मन की प्रवृत्ति किसी वस्तु पर लम्बे समय तक ठहरने लगे तो ध्येय के उस सतत प्रवाह को ध्यान कहते हैं। इसमें ध्येय और ध्याता का अंतर बना रहता है।

8. समाधि - अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें समाधि स्वयं योगी का बाह्य जगत् के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। और यही योग साधना का लक्ष्य है। अतः मोक्ष प्राप्ति से पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना पड़ता है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है, योग भाष्य में संभवतः इसलिए योग को समाधि कहा गया है। यथा "योगः समाधिः" पातंजलि योगसूत्र में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है। समाधि अवस्था में भी योगी की समस्त प्रकार की चित्त वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं। महर्षि पतंजलि ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया है- **तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधिः**¹⁰ अर्थात् - जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है। अतः जब ध्येय और ध्याता का अंतर समाप्त होकर केवल ध्येय रह जाये तो उस अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि की दो श्रेणियाँ होती हैं- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि का मतलब वितर्क, विचार, आनंद से है जबकि, असम्प्रज्ञात में सात्विक, राजस और तमस सभी प्रकार की वृत्तियों की रोकधाम हो जाती है।

उपरोक्त अष्टांग मार्ग के अनुपालन से मनुष्य के चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है और मनुष्य में एकाग्रता आती है। मन स्थिर और शांत हो जाता है।

संदर्भ सूची:

- पातंजलि योग सूत्र, 1/2
वहीं, 2/29
वहीं, 2/30
वहीं, 2/32
वहीं, 2/42
वहीं, 2/49
वहीं 2/54
वहीं 3/1
वहीं 3/2
वहीं 3/3